तात्पर्य

नाना प्रकार के प्रामाणिक एवं मान्य शास्त्रों में भगवद्गीता सर्वोत्तम है। दुर्भाग्यवश, नरपशुओं में शास्त्रों के ज्ञान का और उनके प्रति श्रद्धाभाव का भी अभाव रहता है। यहाँ तक कि बहुत से शास्त्रवेत्ता अथवा शास्त्रोद्धरण करने की योग्यता वाले मनुष्य भी वास्तव में इनमें विश्वास नहीं रखते। कुछ दूसरे व्यक्ति भगवद्गीता आदि शास्त्रों में विश्वास तो रखते हैं, पर भगवान् श्रीकृष्ण में विश्वास का उनमें भी अभाव है और न ही वे उनकी उपासना करते। ऐसे व्यक्तियों की कृष्णभावनामृत में कोई परिनिष्ठा नहीं हो सकती। वरन्, उनका अधःपतन होता है। इन सब में, श्रद्धाशून्य संशयात्मा तो कुछ भी पारमार्थिक प्रगति नहीं करते। श्रीभगवान् और उनके वचनामृत में श्रद्धा न रखने वालों का इस लोक में अथवा परलोक में कभी कल्याण नहीं होता। उनके लिए कोई सुख नहीं है। अतएव श्रद्धाभाव से शास्त्र-सिद्धान्तों का अनुगमन करते हुए ज्ञान प्राप्त करे। पारमार्थिक बोध रूपी शुद्ध-सत्त्व के स्तर पर आरूढ़ होने में एकमात्र यह ज्ञान ही सहायक है। अभिप्राय यह है कि संशयात्मा की मुक्ति नहीं हो सकती। अतएव मनुष्यमात्र को चाहिये कि शिष्य-परम्परा के महान् आचार्यवृन्द के चरणचिन्हों का अनुसरण करते हुए अपने जीवन को कृतार्थ एवं सार्थक करे।

॥५

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय॥४१॥

योग=कर्मयोगमय भक्ति द्वारा; **संन्यस्त**=त्यागकर; **कर्माणम्**=कर्मों को; **ज्ञान**=तत्त्वबोध द्वारा; **संछिन्न**=नष्ट हो गये हैं; **संशयम्**=संशय; **आत्मवन्तम्**=आत्म-परायण; **न**=नहीं; **कर्माणि**=कर्म; **निबध्नन्ति**=बाँधते; **धनंजय**=हे ऐश्वर्यविजयी अर्जुन।

अनुवाद

इसलिए हे धनंजय! जिसने कर्मफल का त्याग, अर्थात् श्रीभगवान् को अर्पण कर दिया है और विवेक द्वारा सब संशयों का नाश कर दिया है, उस आत्मपरायण पुरुष को कर्म नहीं बाँधते॥४१॥

तात्पर्य

जो मनुष्य भगवद्गीता की शिक्षा का उसी रूप में अनुसरण करता है जैसा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका प्रवचन किया, वह दिव्य ज्ञान की कृपा से सब संशयों से मुक्त हो जाता है। पूर्ण कृष्णभावनाभावित होने के प्रभाव से उसे श्रीभगवान् के भिन्न-अंश के रूप में अपने स्वरूप का ज्ञान पहले ही हो जाता है। अतएव वह निस्सन्देह कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त है।

॥५

तस्माद‌ज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत॥४२॥